वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सतश्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

मुमुक्षुजीवोंके परम तारणहार, पंचमकालमें अध्यात्म अमृतकी वर्षा करनेवाले
निष्कारण करुणाशील सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाईके
समाधिदिन (चैत्र सुदि पांचम-१३/०४/२४) पर उनके चरणोंमें कोटि कोटि वंदन

जब प्राणत्यागका प्रसंग है, उसको मृत्यु कहते हैं, उस वक्त तो वेदना बहुत बढ़ती है। तीव्र वेदना बढ़ते-बढ़ते प्राणत्याग हो जाता है। इतनी बढ़ जाती है। ज्ञानी उस वक्त अधिक पुरुषार्थसे स्वरूपमें स्थिति करने लग जाते हैं। तीव्र पुरुषार्थ उसका हो जाता है। इसलिये ज्ञानीके मृत्यु प्रसंगको मृत्यु महोत्सव कहनेमें आता है। 'रत्नकरंड श्रावकाचार'में क्या कहा? मृत्यु महोत्सव। ये महोत्सव है। ज्ञानीके लिये तो यह (महोत्सव है।) जैसे महोत्सवमें आनंद और खुशी बढ़ती है, वैसे मृत्युके कालमें ज्ञानीको आनंद बढ़ जाता है, शांति बढ़ जाती है। वेदना बढ़ती है तो दुःख बढ़ता है ऐसा नहीं है। ऐसी बात है।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३१६, वर्ष-२६, अप्रैल-२०२४

श्रावण शुक्ल ९, मंगलवार, दि. २६-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-१०४ से १०५ प्रवचन-४४

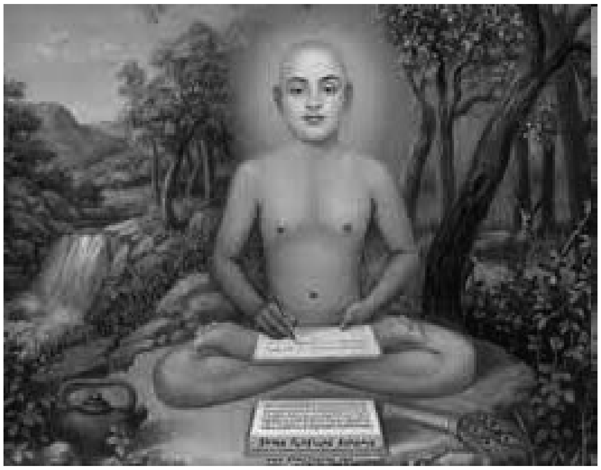

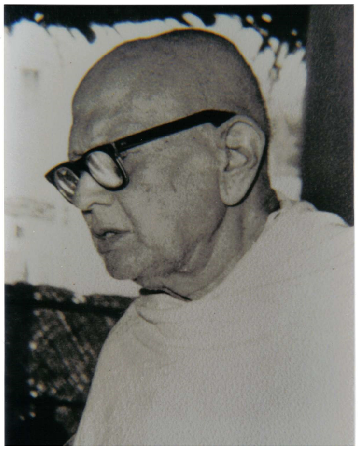

आत्मा ही पञ्च परमेष्ठी है।

अरहंतु वि सो सिद्धु सो आयरिउ वियाणि।
सो उवझायउ सो जि मुणि णिच्छइँ अप्पा जाणि।। १०४।।

आत्मा ही अरहन्त है, निश्चय से सिद्ध जान।
आचारज उवझाय अरु, निश्चय साधु समान।।

अन्वयार्थ - (**णिच्छइँ**) निश्चय से (**अरहंतु वि अप्पा जाणि**) आत्मा ही अरहन्त है ऐसा जानो (**सो फुडु सिद्धु**) वही आत्मा प्रगटपने सिद्ध है (**सो आयरिउ वियाणि**) उसी को आचार्य जानो (**सो उवझायउ**) वही उपाध्याय है (**सो जि मुणि**) वही आत्मा ही साधु है।

यह योगसार शास्त्र है, इसकी १०४ वीं गाथा। आत्मा ही पञ्च परमेष्ठी है। लो! यह आत्मा ही पंच परमेष्ठी के स्वरूप ही है, यह बात कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव की मोक्षपाहुड़ की १०४ गाथा में भी यही है।

अरहंतु वि सो सिद्धु सो आयरिउ वियाणि।
सो उवझायउ सो जि मुणि णिच्छइँ अप्पा जाणि।। १०४।।

निश्चयनय से.... अर्थात् यथार्थ दृष्टि से देखो तो आत्मा ही अरहन्त है - ऐसा जानो। आत्मा स्वयं अरहन्त है। अरहन्त की पर्याय - केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि जो प्रगट है, वे सभी पर्यायें आत्मा के अन्तर में ध्रुवपद में पड़ी है। वे सभी शक्तिरूप से पड़ी है। 'ध्रुवपद रामि रे...' समझ में आया? आत्मा का ध्रुवस्वरूप है। एक समय की दशा है, वह अल्प है, विपरीत है

रागादि। अल्प अर्थात् ज्ञान, दर्शन और वीर्य की अल्प अवस्था है और राग-द्वेष की, वह विपरीत अवस्था है। यह चार घाति; अघाति का कुछ नहीं।

आत्मा में वर्तमान अवस्था में - दशा में अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन, अल्प वीर्य (और) राग-द्वेष के परिणाम हैं। वह तो एक क्षणिक दशा है। उसके स्थायी मूल स्वभाव में तो जो अरहन्त - अनन्त चतुष्टय प्रगट होनेवाले हैं, वे सब अनन्त चतुष्टय आत्मा में अन्दर पड़े हैं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि आत्मा ही अरहन्त है - ऐसा जानो। भगवान मैं अरहन्त आत्मा ही हूँ।

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं कहा था न? (प्रवचनसार की) ८० गाथा। भगवान अरहन्त का द्रव्य अर्थात् शक्तिवान्; गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान प्रगट हालत - दशा - ऐसे जो अरहन्त के द्रव्य-वस्तुस्वभाव और दशा को जो जानता है, वह आत्मा के अन्दर में (उसके साथ) मिलाता है। समझ में आया? मेरे आत्मा में भी यह अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि वस्तु के स्वभाव में अरहन्त पद अन्दर पड़ा है। पड़ा है, वह प्रगट होता है। होवे वह आवे, न होवे वह नहीं आवे। ऐसा भगवान आत्मा को अरहन्त के स्वरूप से जानना चाहिए... ओ...हो...! यह प्रतीति, यह श्रद्धा, रागरहित निर्विकल्प श्रद्धा द्वारा यह भगवान आत्मा अरहन्त हूँ - ऐसी प्रतीति हो सकती है। समझ में आया?

कहते हैं कि अरहन्त का ध्यान करना। कल कहा था न? कल आया था न? वह नहीं था? - तत्त्वानुशासन में १९२ गाथा। यह ध्यान करना। अभी अरहन्त नहीं हैं न? (तो) उनका ध्यान करना, यह तो झूठ-मूठ ध्यान है। भाई! यह झूठ नहीं है, भाई! तुझे पता नहीं है। अरहन्त जो प्रगटरूप अनन्त अवस्था - दशारूप, कार्यरूप जो प्रगट हुए, वे सब कारण अन्दर में तेरे स्वभाव में सब पड़े हैं, भाई! आहा...हा...! उस कारण का उसके बाद कार्य है। समझ में आया?

भगवान आत्मा कारणपरमात्मा अर्थात् कारणजीव ध्रुव वस्तु में अरहन्त पद अन्दर पड़ा है। वहाँ तो ऐसा जबाव दिया है कि यदि वह न हो तो उसकी एकाग्रता से शान्ति और आनन्द का अनुभव, सफलपना जो होता है, वह अरहन्त पद का अन्दर स्वरूप है; इसलिए ध्यान में सफलपना आता है। प्यास लगी हो और पानी न हो और तृप्ति हो - ऐसा होता है? प्यास में सच्चा पानी हो तो प्यास टूटती है; झूठ-मूठ के पानी से प्यास मिटेगी? इसी प्रकार आत्मा अरहन्तपद में अन्दर सच्चीरूप से है। यदि झूठ-मूठी प्रकार से हो तो उसकी एकाग्रता के श्रद्धा, शान्ति, आनन्दादि की दशा जो प्रगट होती है, वह झूठ -मूठ अरहन्त यदि स्वभाव में हो तो वह प्रगटेगी नहीं। समझ में आया? बजुभाई!

मोक्षपाहुड में भी १०४ गाथा में यही कहा है, समझे न? मोक्षपाहुड़। (यहाँ) १०४ ऐसी है। वहाँ भी १०४ ऐसी है। देखो! आगे आचार्य कहते हैं कि जो अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं, वे भी आत्मा में ही हैं; इसलिए आत्मा ही शरण है - मोक्षपाहुड़ १०४।

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।। १०४।।

पण्डित जी! इतनी स्पष्टता है, देखो न! आहा...हा...! सर्वथा मौजूद है। वस्तु में मौजूद ही न हो तो इनलार्ज कहाँ से होगा? इनलार्ज अर्थात् पर्याय में कार्यरूप कहाँ से आयेगा? समझ में आया? अरे...! यह भरोसा भी कौन लावे?

जिसकी सत्ता में... भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी हैं, ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप

हैं, शक्तिरूप से आत्मा की अवस्था हैं.... प्रगट होने पर वह आत्मा की ही अवस्था है। इसलिए मेरे आत्मा ही का शरण है, इस प्रकार आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है। समझ में आया? १०४, हाँ! यहाँ भी १०४ गाथा ऐसी है, लो! कुदरत ही देखो न मेल! यहाँ १०४ है, वहाँ भी मोक्षपाहुड़ की १०४ गाथा है। समझ में आया? भगवान आत्मा... भाई! तू बड़ा है, भाई! तू छोटा नहीं। तेरी दशा में अल्पज्ञपना हो परन्तु स्वभाव सर्वज्ञ है। अल्पदर्शीपना दशा में हो परन्तु स्वभाव सर्वदर्शी है। अल्प वीर्य वर्तमान प्रगट में हो परन्तु आत्मा अनन्त वीर्य का धाम है। राग-द्वेष की विपरीतता हो परन्तु वीतराग आनन्द का यह आत्मा कन्द है।

मुमुक्षु - इसे पण्डिताई रुचती है?

उत्तर - रुचती है, इसे अनादि से उस वस्तु की रुचि नहीं होती... भरोसा नहीं आता कि मैं ऐसा भगवान? बीड़ी के बिना चले नहीं, उसके बिना चले नहीं, धूल के बिना चले नहीं, कीर्ति के बिना चले नहीं, उसे ऐसा मैं? यह किसी प्रकार अन्दर जमता नहीं है। प्रेमचन्दभाई! आहा...हा...!

भाई! तू स्वयं ही अरहन्त स्वरूप शक्तिरूप विराजमान है। उसका ध्यान कर! तू सिद्धस्वरूप अन्दर विराजमान है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। वस्तुपने है। कहीं पर्याय में सिद्ध समान है? पर्याय में सिद्ध समान हो तो फिर पुरुषार्थ करना क्या रहा? अन्तरस्वरूप ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द ऐसे ही अनन्त स्वच्छता, अनन्त परमेश्वरता, कर्ता-कर्म षट्कारक की शक्तियाँ भी एक समय में अनन्त-अनन्तरूप विराजमान आत्मद्रव्य में है - ऐसा आत्म-दरबार जिसमें अनन्त गुण शाश्वत् हो, शक्तिरूप सामर्थ्यरूप (विराजमान है)। अनन्त पर्यायें एक गुण की हो वे तो भले परन्तु उसके अतिरिक्त इसकी अनन्त शक्ति एक-एक गुण की है। समझ में आया?

अस्तित्व रखता है, प्रमेयत्व रखता है, ध्रुवता रखता है, नित्यता अन्दर इसे प्रत्येक गुण को निमित्त होने की ताकत रखता है, अपनी अस्ति है, अनन्त गुण की उसमें नास्ति है, एक-एक गुण अस्ति है और अनन्त गुण की (नास्ति है)। ऐसी एक-एक गुण अनन्त पर्याय होने पर भी उसकी शक्ति उसके अतिरिक्त वापिस अनन्त है। आहा...हा...! समझ में आया। भाई! यह वस्तु ऐसी है। यह कोई कल्पना से बड़ी कर दी है - ऐसा नहीं। वस्तु ही ऐसी है। वस्तु ही ऐसी है।

भगवान आत्मा...! कहते हैं कि भाई! सिद्ध का ध्यान अर्थात् तेरे स्वरूप का ध्यान कर। त्रिकाली भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी है, भाई! उसकी एकाग्रता कर। उस एकाग्रता का अर्थ श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, ये तीनों स्वभाव की एकाग्रता के तीनरूप हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

आचार्य का ध्यान। आचार्य जो कुछ शिक्षा-दीक्षा देने में जो विकल्प है - राग, वह प्रमादभाव है, वह नहीं रखना। वह आचार्यपना नहीं; आचार्यपना तो अन्दर में ज्ञान-दर्शन, आनन्दादि पाँच आचारों का निर्मल परिणमन परिणमित होना, वह आचार्यपना है। शिक्षा-दीक्षा आदि देने का विकल्प होता है - रंजन-राग, वह आचार्यपना नहीं है। वह तो राग है, इन परमेष्ठी की पर्याय में वह राग नहीं मिलता। समझ में आया? आचार्य - णमो लोए सव्व आयरियाणं - सबमें 'लोए' लेना, हाँ! इसलिए अन्त में लिखा है - णमो लोए सव्व साहूणं - अन्त दीपक है; इसलिए अन्त में बताया है, वरना णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं, इन आचार्यों को नमस्कार हो परन्तु इन आचार्य का पद, वीतरागी पर्याय में परिणमित पद है - ऐसी समस्त

पर्यायें तेरे अन्तर में है। समझ में आया?

ऐसे आचार्यों को इस प्रकार वीतरागी पर्याय द्वारा आचार्य को पहचानकर और उसका अन्तर में तल्लीन हो जाना, वह स्वयं ही आचार्य हो जाता है। उपाध्याय भी दूसरे को पढाते हैं। पढाते हैं - ऐसा विकल्प है, वह प्रमाद है। समझ में आया? उपाध्यायपना है, वह तो वीतरागी पर्याय है। भगवान द्रव्य वीतरागी, गुण वीतरागी, और प्रगट पर्याय जितनी वीतरागी प्रगट हुई है, तीन (कषाय के अभावपूर्वक) गुणस्थान प्रमाण में, उस वीतरागी पर्यायवाला द्रव्य, वह उपाध्याय है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसे उपाध्याय का ध्यान करना।

साधु - उन्हें अट्ठाईस मूलगुण होते हैं परन्तु वह तो प्रमाद में जाते हैं। (क्योंकि) विकल्प है। उनकी जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी परिणति जो है, उसे साधु कहते हैं। वे साधु, स्वभाव को साधते हैं। पूर्ण स्वभाव को वे साधते हैं, अन्य राग कुछ नहीं साधता। समझ में आया? ऐसे परमात्मस्वरूप में पाँचों परमेष्ठी पद अन्दर पड़े हैं। आहा...हा...! पड़े हैं, वे प्रगट होते हैं। ऐसा अन्तर में भरोसा करके उसका ध्यान कर - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ध्यान फिर चारित्र की पर्याय है। रुचि प्रगट होने के बाद स्थिरता प्रगटे न? भगवान आत्मा ऐसा है, है ऐसी शक्ति... रात्रि में तो बहुत आया था। अब वह कोई फिर से आयेगा? रात्रि में तो बहुत आया था। तुम कल थे? नहीं थे? ओ...हो...! कल तो आया, भाई! आवे तब आ जाये न यह तो! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु - वह किसका ध्यान करते हैं?

उत्तर - आनन्द का ध्यान करते हैं। केवली किसका ध्यान करते हैं? पण्डितजी! प्रवचनसार में आया न? मोह नहीं, पदार्थ का ज्ञान पूरा है, तो किसका ध्यान करते हैं? तो उनको क्या ध्यान है? ऐसा प्रश्न हुआ है। भाई! यह तो अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं न! यह उनका ध्यान कहो, उनका आनन्द का अनुभव (कहो)। आहा...हा...! समझ में आया? प्रवचनसार। अन्तिम गाथाएँ आती हैं न? ज्ञेय अधिकार। आहा...हा...!

यह सब अस्ति है, हाँ! यह सब बात नहीं। इसलिए शास्त्र में वह बात आती है न? षटखण्डागम में, 'षट पद प्ररूपणा'। पण्डितजी! यह पहला शब्द आता है न? षट् पद प्ररूपणा। षट् खण्डागम की पहली शुरुआत आवे जब (वहाँ ऐसा आता है) षट् पद प्ररूपणा। तथापि पदार्थों की कथन शैली आती है। षट् खण्डागम का पहला शब्द है, हाँ! उसमें भी ऐसा आता है। श्वेताम्बर में आता है, मुझे तो श्वेताम्बर में से पता है। अनुयोग द्वार में, पहले आया शब्द, उसमें यही आया, षट् पद प्ररूपणा। जो पदार्थ जिस प्रकार है, उसे उस पदार्थ को वाणी के पद द्वारा उसका कथन करना। सत् हो, उसका कथन है। न हो, उसका कथन नहीं - ऐसी पहली शुरुआत ही षट्खण्डागम में वहाँ से की है। समझ आया?

आत्मा वह है, ऐसा है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु - ऐसी वीतरागी दशाएँ साधक को भले ही असंख्य हैं और सिद्ध की, केवली की अनन्त पर्याय है और उन सब पर्यायों को पिण्ड भगवान आत्मा है - ऐसा सत् है। वह सत् पदार्थ ऐसा है, अस्तित्ववाला भगवान इस प्रकार है। उसकी अन्तर में श्रद्धा (करे), राग का आश्रय छोड़कर उसकी श्रद्धा (करे)। जब स्वभाव वीतराग है तो उसकी वीतरागदशा द्वारा ही उसकी प्राप्ति होती है। स्वानुभूत्या चकासते। समझ में आया? उस वस्तु में राग नहीं है कि जिससे राग द्वारा उसकी प्राप्ति होवे।

भगवान आत्मा अकषाय वीतराग रस से भरपूर पड़ा है। क्या कहना उसकी बात, कहते हैं। समझ में

आया? ऐसे आत्मा का पंच परमेष्ठी के रूप में ध्यान करना। समझ में आया? वह आत्मा ही स्वयं ध्यानगर्भित है। आत्मा के ध्यान में ही पाँचों परमेष्ठी का ज्ञान गर्भित है। शरीरादि की क्रिया ध्यान में न लेकर.... अरहन्त का समवसरण और वाणी और शरीर को लक्ष्य में न लेकर उनका आत्मा इस प्रकार केवलज्ञानादि परिणमित अस्तित्वतत्त्व है - ऐसे अरहन्त को लक्ष्य में लेना। समवसरण नहीं, वाणी नहीं, शरीर नहीं। सिद्ध को तो कोई दूसरा है नहीं, वह तो है एकदम निर्मल पर्याय से परम पारिणामिकदशा से पूरे हैं। आचार्य का ध्यान भी उनके विकल्प, वाणी और रंजन - राग के परिणाम को लक्ष्य में न लेना। उनका आत्मा जिस प्रकार वीतरागीदशा से परिणमित हुआ, उसे लक्ष्य में लेना। ऐसे उपाध्याय को भी इस प्रकार और साधु को भी इस प्रकार (लक्ष्य में लेना)।

क्रिया ध्यान में न लेकर केवल उनके आत्मा का आराधन ही निश्चय आराधन है। देखो! जिसे आत्मा कहते हैं... अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह आत्मा नहीं; वह तो पुण्य-परिणाम है। आचार्य, उपाध्याय... आचार्य को शिक्षा-दीक्षा देने का विकल्प उठता है, वह आस्रव तत्त्व अथवा शुभतत्त्व है, शुभ आस्रव है। वह आत्मा नहीं है। उसकी - आत्मा की स्थिति जो है, उसे श्रद्धा-ज्ञान में लेकर आत्मा में यह सब है - ऐसा उसे ध्यान करना चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया?

समयसार कलश में कहा है। आधार दिया है। आत्मा का स्वरूप....

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मा तत्त्वामात्मनः।
एक एव सदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा।। २३९।।

आत्मा का स्वरूप सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रमय एकरूप है, यही एक मोक्ष का मार्ग है। देखो, एक एव सदा सेव्यो। मोक्षमार्ग एक ही है, भाई! यह स्वभाव महान परमात्मा, महा परमात्मा, स्वयं परमात्मा महा है। ऐसे परमात्मा की अन्तर -श्रद्धा ज्ञान और रमणता (हो), वह मोक्षमार्ग निर्विकल्प एक ही है। समझ में आया? दूसरा मोक्षमार्ग तो निमित्त देखकर कथन-निरूपण दो प्रकार का है। वस्तु दो प्रकार से नहीं। समझ में आया?

भाई ने 'टोडरमलजी' ने यही कहा है। अपने भी आता है न? निरूपण, नहीं आया था? (समयसार) ४१४ गाथा है। अन्तिम गाथा, उस दिन कहा था। श्रमण और श्रमणोपासक के भेद से दो प्रकार के द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग है - ऐसा जो निरूपण प्रकार... टोडरमलजी ने घर का शब्द नहीं रखा है। जो शैली आचार्य की है, वह शब्द ही रखा है। पण्डितजी! उन्होंने भी उसमें कहा है न कि मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है - यह शब्द प्रयोग किया है। मोक्षमार्ग दो प्रकार का नहीं, उसका निरूपण दो प्रकार से है। वह शब्द यहाँ है। टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ ण इच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि।। ४१४।।

एक-एक शब्द उन्होंने शास्त्र में से लिया है। भले ही सामान्य का विशेष स्पष्ट किया है परन्तु इस शास्त्र के जो शब्द हों, उस शैली से ही बात की है, घर की (बात) कुछ नहीं की है परन्तु लोगों को उसका विश्वास नहीं आता। सीधे शास्त्र के अर्थ समझते नहीं और सच्चे पण्डितों द्वारा किये हुए अर्थ का बहुमान नहीं आता। यहाँ भी कहा, देखो! दो भेद से (दो प्रकार के) द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग है। ऐसा जो प्ररूपण - प्रकार (अर्थात् ऐसे प्रकार की जा प्ररूपणा) वह केवल व्यवहार ही है।.... परमार्थ नहीं। समझ में आया?

(शेष अगले अंकमें..)

पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी के ११३ वें जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की ११३ वीं जन्मजयंति उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में दि.१७-५-२०२४ से दि.१९-५-२०२४ त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित 'गुरुगौरव' हॉल में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ग्रंथ पर 'गुरुगौरव' हॉल में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, बादमें पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद 'गुरुगौरव' हॉल में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन और 'गुरुगौरव' हॉल में भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा। दि.१९-५-२०२४ पूज्य सोगानीजी के जन्मजयंति दिन पर पूज्य भाईश्री के प्रवचन के बाद जन्मवधामणा तथा भक्ति की जायेगी। इस प्रसंग में सभी मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है।

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर

आवश्यक सूचना

स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको **(e-copy) - pdf.** की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करे।
श्री नीरव वोरा - ९८२५०५२९१३

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अप्रैल-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि श्रीमती वर्षाबहिन हेमाणी, भावनगर की ओर से ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

परमागमसार बोल नं-१००

'गाय-भैंस आदि पशुओं के कण्डे मिलते ही गरीब स्त्रियाँ बहुत खुश हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर सेठ लोग बाग़-बाग़ हो जाते हैं। परंतु कण्डे और धनादि में कोई अंतर नहीं। एक बार आत्मा के वैभव का दर्शन करे, तो बाह्य वैभवों की निर्मूल्यता भासित हो जाए।' १००.

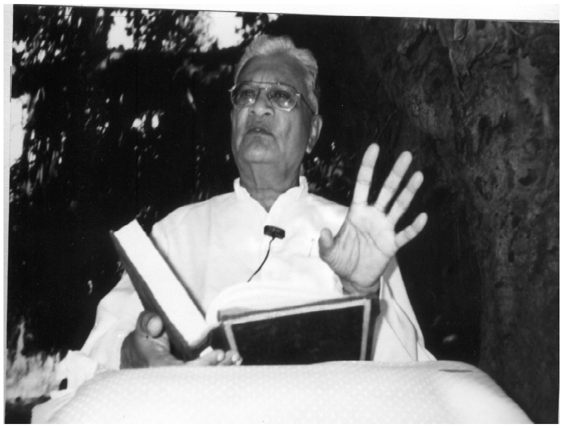

('परमागमसार') - वचनामृत - १०० **'गाय-भैंस आदि पशुओं के कण्डे मिलते ही गरीब स्त्रियाँ बहुत खुश हो जाती हैं।'** यह कण्डा जो जलाते हैं, उसे खरीदकर लाना न पड़े, पैसे खर्च करने न पड़े, इसलिए पशुओं की विष्टा इकट्ठी करने निकलते हैं, गोबर इकट्ठा करने निकलते हैं। गाँव में जो बड़े हुए हो उसको पता होगा। जब कि यह अहीर, ग्वाले लोग तो कण्डे का व्यवसाय करते हैं, उनका तो वह कमाई का साधन है। क्या कहते हैं ? यह गोबर क्या है? तिर्यंच की विष्टा है। गोबर क्या चीज है ? तिर्यंच की विष्टा है, पशु की विष्टा है। इस विष्टा के मिलने पर भी मनुष्यप्राणी (खुश होता है)। ये जो स्त्रियाँ हैं, वह तो मनुष्य ही है न ! पर्याय से मनुष्य है। उसकी स्थिति (पशु से) ऊँची है। यहाँ तुलना में क्या लेना है? कि, मनुष्य जो है वह तिर्यंच से उच्च स्थान में है, फिर भी वह तिर्यंच की विष्टा मिलने पर खुशी होता है ! देखो ! यह दीनता क्या चीज़ है ? जीव रजकण में जब सुख मानता है तो उसकी परिस्थिति कहाँ तक गिरती है ! कि, खुद मनुष्य होने के बावजूद भी अपने से हलकी जाति के जीव - तिर्यंच जो हैं, उस तिर्यंच की विष्टा में भी वह आनंद मानता है। यह तो अभी इससे भी आगे की बात करेंगे। वह खुश-खुश हो जाती है। इसमें भी बड़ा गोबर का पिंड जब मिल जाये कि जिस एक से पूरा टोकरा भर जाये, तब तो बहुत खुश हो जाये कि चलो ! अच्छा मिल गया। **'और धन-वैभव मिलने पर सेठ लोग बाग़-बाग़ हो जाते हैं।'** इन दोनों को एक ही वर्ग में रख दिया।

गुरुदेवश्री चंदा इकट्ठा नहीं करते थे। उनकी मुख्य पद्धति ऐसी थी, वे कभी चंदा इकट्ठा नहीं करते थे। चंदा का नाम नहीं। जिसको अपनी मर्ज़ी से देना हो वह दे बाकी कोई करोड़पति एक पैसा भी न दे, तो भले ही न दे। इसके साथ कोई निसबत नहीं। इसलिए पैसेवालों को राजी रखने का तो खैर कोई प्रश्न ही नहीं था। लेकिन इन पैसेवालों की दीनवृत्ति कैसी है? तो कहते हैं कि, यह गोबर लेने निकली हुई बाई जैसी है! दोनों को एक ही वर्ग में रख दिया है। दोनों की दीनता में कोई फ़र्क नहीं है। ऐसा कहते हैं।

अरे ! लड़ती हैं उसके लिए, गोबर के लिए दो-चार स्त्रियाँ जब एक साथ हो जाती हैं तो आपस में

लड़ाई कर लेती हैं, वैसे यहाँ पैसे के लिए लड़ाई चलती है। बच्चेलोग जब खेलते हैं तब कौड़ियों के लिए लड़ लेते हैं - सिर फोड़ देते हैं ! खेलते-खेलते अगर आमने-सामने हो जाये तो पत्थर से सिर फोड़ देते हैं कि नहीं ? ऐसा है। जीव की स्थिति ऐसी है ! ज्ञानियों जगत के सभी पदार्थों को गोबर व कौड़ी जैसे देखते हैं और जिनको जगत के पदार्थों की महत्ता है, महिमा है उन्हें पागल समझते हैं, उन्हें मूर्ख समझते हैं कि क्या इस गोबर और कौड़ी में महिमा कर रखी है !

इतना ही नहीं, इस महिमा को (ज्ञानी) कैसे जानते हैं ? कि, जब तक जगत में जो-जो पदार्थ महत्तारूप - महत्ता के कारणरूप माने जाते हैं, गिने जाते हैं, इसकी महत्ता जीव को छूटती नहीं है, तब तक जीव को आत्मा की महत्ता नहीं आती है। जड़ पदार्थ की महत्ता जब तक नहीं छूटती है तब तक चैतन्य पदार्थ की महत्ता नहीं आती है। यह एक विशेष बात है। क्योंकि जड़ की महत्ता के वक्त जीव के परिणाम का रस जड़ में जाता है और जड़-सा हो जाता है, उसमें फिर चैतन्य की स्फुरणा नहीं रहती। वहाँ चैतन्य मुरझाता है, मूर्च्छित हो जाता है, मूर्च्छा आ जाती है।

चैतन्य की इस मूर्च्छा टालने के लिए, सर्व प्रथम उसको जड़ पदार्थ की कीमत छूट जानी चाहिए। महत्ता छूट जानी चाहिए और वह भी आत्मस्वरूप की महत्ता के वश। ऐसे ही ओघे-ओघे नहीं कि चलो, हमें जड़ की महत्ता नहीं है इसलिए छोड़ दिया, ऐसे भी नहीं। आत्मस्वरूप की महत्ता आने के साथ (उसकी महत्ता छूटनी चाहिए)। त्याग तो ग्रहणपूर्वक होता है, ग्रहण क्या किया ? इस पर त्याग का मूल्यांकन है। आत्मा ने ग्रहण क्या किया ? यदि शुद्धात्मतत्त्व को ग्रहण किया, परमात्मतत्त्व को ग्रहण किया, आत्मा परमेश्वरपद है (ऐसा यदि ग्रहण किया) तब तो उसे बाहर की कीमत छूटी है। फिर उसे बाहर में त्याग होना सहज और संभवित है। फिर तो उसे वह सानुकूल है। परंतु यूँ ही (त्याग) किया होगा, तो वह भी योग्य नहीं होने से, एक नहीं तो दूसरे अनर्थ का कारण बनता है। (क्योंकि) उसमें मिथ्यात्व की पुष्टि होती है।

प्रश्न :- प्रथम जब आत्मस्वभाव की महत्ता आती है तब क्या लगता है ? और कैसे वह महत्ता लगती है?

समाधान :- पहचान हुए बिना महत्ता नहीं आती। किसी भी पदार्थ की महत्ता बिना पहचान नहीं आती। जगत में ऐसा कहा जाता है कि हीरा कीमती चीज़ है, सोना कीमती चीज़ है, लेकिन उसकी कीमत तब है जब पहचान हो। घर में हीरा पड़ा हो लेकिन पहचान नहीं होगी तो पैर से ठोकर मारेगा ! क्योंकि बिना पहचान कीमत नहीं आती। (अतः) पहचान करनी चाहिए। सर्व सत्पुरुषों का यह वचन है कि सब से पहले आत्मा को पहचानो ! आत्मा को पहचानो, पहचानपूर्वक एकाग्र हो ! यह प्रथम आज्ञा है !

यद्यपि पहचान होने पर एकाग्रता हुए बिना रहेगी नहीं। पहचान आती है तब वह अनंत महिमावंत तत्त्व की महिमा आती है, और महिमा जिसकी आयी वहाँ सर्व परिणाम एकाग्र हुए बिना नहीं रहते। यह कुदरती परिस्थिति है। अतः सर्व प्रथम पहचान करो ! जितनी खुद की शक्ति है, उस सर्व शक्ति से - पूरे उद्यम से आत्मा की पहचान करने का प्रयास करना है। दूसरा सब बाद में करना, पहले यह करना है। ऐसी बात है। यह बात तो ली है न ! समयसारजी की १४४ वीं गाथा में लिया है कि - 'प्रथम तो श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्मा का निश्चय करना।' ऐसी आज्ञा की है ! 'निश्चय करना' कहो चाहे 'पहचान करना' कहो, दोनों एकार्थ हैं।

यहाँ क्या कहते हैं ? कि, इसतरह **'धन-वैभव मिलने पर सेठ लोग बाग़-बाग़ हो जाते हैं।'** चिट्ठा में मुनाफा बढ़ा हुआ मालूम हो तब रस बढ़ जाता है कि अच्छा ! चलो, अपनी पूँजी बढ़ी है ! पूँजी बढ़ी, अपनी शक्ति बढ़ी, अपनी पूँजी बढ़ी - ऐसे इसका रस

चढ़ता है। जब कि वह पदार्थ तो आत्मा से सर्वथा भिन्न है और चैतन्य पदार्थ की अपेक्षा से तो वह जड़ है। इतना ही नहीं, नाशवंत है। नाशवंत है मतलब इसका संयोग भी कायम नहीं रहनेवाला है, फिर भी जीव के रस का पारा उपर चढ़ जाता है। जब यह रस का पारा चढ़ जाता है तब आदमी बहक जाता है न ! जैसे मुझे किसी की परवाह नहीं है ! देखा जाता है कि नहीं ? लोग कहते हैं कि भाई ! पहले कुछ नहीं था इसमें दो पैसे हो गये, इसलिए (गुजराती में तो कहावत है कि) 'चकली फुलेके चड़ी गई' मतलब अब जमीन पर पैर ठहरते नहीं हैं। पहले यूँ चलते थे अब ऐसे चलने लगे हैं। लोगों में तरह-तरह से बोला जाता है जैसे मुँह फुलाकर अब चल रहे हैं, क्योंकि सब बदल गया ! (यह सूचित करता है कि) उसे पैसे की गर्मी आ गई है !

नाशवंत पदार्थ के काल्पनिक आधार से भी जीव के परिणाम को इतना बल मिलता है, तो अनादि-अनंत शाश्वत चैतन्य ऋद्धि दिव्य शक्तियों से भरा हुआ तत्त्व है, जो सम्यग्दृष्टि जीवों की निश्चिंतता का आधार है। इसका आधार जो लेते हैं, आश्रय लेते हैं कि 'मैं ऐसा !' जो परमेश्वरपद है, साक्षात् सिद्धपद है, इसके आश्रय का बल कितना रहता होगा ? अनंत रहता है। उन्हें जगत में किसी की परवाह नहीं रहती कि जगत के जीव मुझे अनुकूल रहे तो ठीक ! दूसरे लोग मुझे धर्मी जाने तो ठीक ! लोग मुझे ऐसा जाने और माने तो अच्छा ! ऐसी दूसरों से अपेक्षित भावों की लाचारी छूट जाती है।

सोगानीजी के साथ तो (मेरा) परिचय था, काफी परिचय था (इसलिए) एक बार कहा कि 'आपके बारे में गुरुदेव को पता चले तो काफी प्रमुदित होंगे।' तब उन्होंने कहा 'मानो कि गुरुदेव ने जान लिया और गुरुदेव को प्रमोद भी आया, (तो) मेरे आत्मा को क्या फायदा होगा?' ठीक ! मैं तो स्वार्थी हूँ। मुझे कहाँ लाभ होगा, इतना ही देखता हूँ ! कोई मुझे धर्मी या अच्छा जाने, इससे मेरे आत्मा को तो लाभ हो जाये, ऐसा तो नहीं है। जब ऐसा नहीं है तो मेरा इसमें कोई प्रयोजन नहीं रहा। ऐसे प्रयोजन रहित कार्य में मुझे रस नहीं है। मुझे मेरे प्रयोजनभूत कार्य में रस है। (यानी कि) मुझे आत्मशांति व आत्मिक सुख की प्राप्ति हो, मेरे आत्मगुणों का विकास हो और अवगुणों का नाश हो यही मेरा प्रयोजन है। इसमें ही मुझे रस है, अन्य किसी भी कार्य में मुझे रस नहीं है।

प्रश्न :- सभी ज्ञानियों को ऐसा ही होता है ?

समाधान :- सभी को, यह तो एक का दृष्टांत लिया। (वैसे तो) सभी ज्ञानियों की यही स्थिति है। आत्मदृष्टि प्रगट हुई मतलब क्या ? कि, आत्मा के गुण की, आत्मा के स्वभाव की दृष्टि प्रगट हुई। वह कब प्रगट होती है ? कि, जब अनेक प्रकार के व्यामोह की मंदता होती है। जब किसी भी मुमुक्षुजीव को बाह्य लोभ, बाह्य मान, बाह्य कीर्ति, बाह्य पदार्थ, बाह्य दृष्टि - इन सभी प्रकार के बाह्य तत्त्वों का व्यामोह मंद होता है, तब उस जीव की दृष्टि स्वभाव से, गुण से उत्पन्न होनेवाले सुख पर जाती है। मालूम होता है कि अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं है। सद्गुण के अलावा कहीं भी सुख नहीं है। चाहे वह जीव फिर स्वर्ग में जाये या जगत के किसी भी कोने में जाये। सद्गुण के अलावा कहीं सुख है नहीं, जब कि अवगुण के साथ दुःख अविनाभावीरूप से जुड़ा हुआ है। धर्म के प्रकरण में सुख-दुःख का हिसाब ऐसा है। जगत के प्रकरण में दूसरी बात है। जगत में पैसे और संपत्ति हो वहाँ सुख और गरीबी व शरीर की अशाता में दुःख ऐसा हिसाब है। वह संपत्ति और शाता में सुख का नापदंड यहाँ नहीं चलता। संपत्तिवान दुःखी देखे जाते हैं और शरीर तंदुरस्त व शाता के उदय सहित हो वे भी बेचैन और दुःखी देखे जाते हैं।

मुमुक्षु :- यहाँ की तो दुनिया ही पूरी अलग है !

पूज्य भाईश्री :- अलौकिक विषय कहा है ! इसीलिए इस विषय को लौकिक दृष्टि से अलग, विशिष्ट, अलौकिक गिना जाता है !!

इसलिए (यहाँ कहा कि) उसको सुख वहाँ से लेना है। धर्मी को गुण से उत्पन्न सुख चाहिए, उन्हें बाह्य पदार्थमें से सुख नहीं लेना है। इसलिए जो (धन, वैभव मिलने पर) बाग़-बाग़ हो जाते हैं, **'परंतु कण्डे और धनादि में कोई अंतर नहीं।'** देखो ! ज्ञानी की दृष्टि में पैसे से सुख माननेवाला कण्डे में सुख माननेवाले गरीब जैसा है !! उनकी दृष्टि में वह श्रीमंत नहीं अपितु वह गरीब है !!

गुरुदेवश्री तो कहते थे, भावनगर के महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी सोनगढ़ पधारे तब कहा था कि देखो, दरबार ! हमारी तो बात पूरी अलग है, जो थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, ज्यादा माँगे वह बड़ा भिखारी ! आपको साल में एक करोड़ रुपया चाहिए इसलिए आप हमारी नज़र में तो बड़े भिखारी हो। क्योंकि आपकी खुशामत करके हमें कोई पैसा चाहिए, ऐसी व्यापार की दृष्टि धर्म में तो नहीं हो सकती। मानो कहीं है तो वह धर्म नहीं रहा दुकानदारी हो गई। अगर पैसा इकट्ठा करने के लिए श्रीमंतों की या राजाओं की जहाँ प्रशंसा की जाती है, वहाँ तो फिर दुकानदारी हो गई। फिर वह धर्म का स्थान नहीं रहता।

हमें अपना आत्मा क्यों दिखता नहीं ? ऐसा एक प्रश्न आता है। तो कहते हैं कि बुद्धि में तो खामी नहीं है। संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव है इसलिए बुद्धि की कमी तो नहीं कह सकते। जगत के अनेक चातुर्यताभरे कार्य तो जीव करता ही है, तो उसमें बुद्धि की कमी तो नहीं कह सकते। (अर्थात्) बुद्धि तो है। अब, ज्ञान में बुद्धि का उघाड़ होने के बावजूद भी व आत्मा के बारे में कह रहे सत्शास्त्र, सत्पुरुष आदि मिलने पर भी ज्ञान में अपना आत्मा भासित क्यों नहीं होता ? कि, इसका यह स्पष्ट कारण है कि जब तक जीव को जगत के पदार्थों की महत्ता है तब तक उसे आत्मा भासित नहीं होता। यह बात स्पष्ट है। जगत के पदार्थों की महत्ता पूर्ववत् रहा करे और शास्त्र पढ़ने से उसे आत्मा समझ में आ जाये, भासित हो जाये, ऐसा कभी नहीं बनता।

श्रीमद्‌जी ने तो एक (जगह) बहुत ही स्पष्ट लिखा है ! लौकिक अभिनिवेश अर्थात् द्रव्यादि लोभ, तृष्णा, दैहिक मान, कुल, जाति इत्यादि संबंधित मोह या विशेषत्व मानना हो; विशेषत्व मानना मतलब (यहाँ जो महत्ता कही वह), उसे छोड़नी न हो, अपनी बुद्धि अनुसार स्वेच्छा से अमुक गच्छादि का आग्रह रखना हो; वह भी पर में जाता है, तब तक जीव को अपूर्व गुण कैसे प्रगट हो ? नहीं होगा। यह विचार सुगम है, कि नहीं हो सकता। (अन्य एक पत्र में) तो बहुत स्पष्ट लिखा है कि उसे (आत्मा) भासित नहीं होता। जब तक लौकिक पदार्थों की महिमा है तब तक उसका रस ज्ञानदर्पण को मलिन करता है। बुद्धि का उघाड़ भले ही हो परंतु वह मलिनबुद्धि है। अतः इसमें शुद्ध - निर्मल ऐसा चैतन्य तत्त्व भास्यमान नहीं होता है। जो आत्मतत्त्व शुद्ध, निर्मल है वह ज्ञानस्वभावी है। ज्ञान में ज्ञान का स्वभाव ही भासित नहीं होता है, क्योंकि ज्ञान में ज्ञान का स्वभाव भासित होने में बाधक ज्ञान से विरुद्ध ऐसे जड़ तत्त्व का जो ज्ञान में रस है उस रस को नहीं टाला- ऐसा है। श्रीमद्‌जी ने मुमुक्षुओं के लिए बहुत मार्गदर्शन दिया है।

(यहाँ कहते हैं) **'एक बार आत्मा के वैभव का दर्शन करे, तो बाह्य वैभवों की निर्मूल्यता भासित हो जाए।'** ऐसा है। एक बार देखे तो निर्मूल्य भासित हो और विचार से निर्मूल्य करे तो देखने में आये। क्योंकि दोनों एक साथ होता है। अलग-अलग करने का प्रश्न नहीं। आत्मा की पहचान करने के प्रयास में विचार की स्थिति में निर्मूल्यता विचारपूर्वक लगनी चाहिए, विचारपूर्वक आनी चाहिए।

विचारपूर्वक मतलब वैसे विचार किया तो जाता है, विचार ही नहीं किया जाता है सो बात नहीं है। लेकिन मूल्य छूटता है कि नहीं यह सवाल है। इसकी कोई कीमत नहीं है, इसकी कोई कीमत नहीं है, इसकी

कोई कीमत नहीं है - ऐसा विचार करने पर भी वास्तव में इसकी कीमत छूटती है कि नहीं, यह देखना है। अंतरंग से छूटती है कि नहीं यह देखना है।

अगर इसकी कीमत छूट जाये; जब कि ऐसी कीमत आने के पीछे मूल कारण सुख है। सुख की भ्रांति के कारण इसकी कीमत आ गई है, तो इसके लिए विचार की सही रीत कैसी होनी चाहिए ? कि, जहाँ-जहाँ उसे सुख का अनुभव हो; यद्यपि वह वास्तव में सुख नहीं सुखाभास है, जहाँ-जहाँ ऐसे सुख का अनुभव हो, जिस-जिस परिणाम में हो, जिस-जिस संयोग में, इष्ट संयोग - अनिष्ट वियोग वह उसके सुख का कारण है। इसमें (जीव ने) इष्ट-अनिष्टपने की कल्पना की है। वास्तव में कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है और हकीकत में वहाँ सुख है या सुखाभास है? (इस) अनुभवको पकड़कर, अवलोकन द्वारा इसका मूल्य छोड़ना चाहिए। मूल्य छोड़ना चाहिए, इसकी कीमत छोड़नी चाहिए। जहाँ अच्छा लगा वहाँ महत्ता आयी, वहाँ उसका मूल्यांकन हो गया कि यह अच्छा है। जगत में कोई जड़ पदार्थ चैतन्य के लिए अच्छा भी नहीं है और बुरा भी नहीं है। ऐसा जो सत्य है, परम सत्य है, वह किस प्रकार सही है? वह अनुभव से किस प्रकार सही है? विचार में सही होना पर्याप्त नहीं है अनुभव में किस प्रकार सही है? इसके लिए प्रयास चलना चाहिए।

अगर इस प्रकार विचारपूर्वक निर्मूल्य किया होगा तो ज्ञान में मलिनता नहीं रहेगी, उस भूमिका के योग्य। और इस ज्ञान में स्वयं का ज्ञानस्वभाव क्या है ? कैसा है? ऐसा प्रतिभास होने का अवसर आये और एकबार यदि वह अपने निधान को देख ले, कि मेरा स्वरूप तो केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय मंडित है, तो उसे जगत के कोई भी पदार्थ मूल्यवान भासित नहीं होंगे। निर्मूल्य भासित होंगे। पूरी दृष्टि तब से बदलती है।

(इसलिए कहते हैं कि) एक बार आत्मा के निधान को देख लिया तो इतनी महत्ता आयेगी, इतनी महत्ता आयेगी कि एक पलड़े में खुद का आत्मा, तराजू के एक पलड़े में अपना आत्मा और दूसरे पलड़े में तीन काल, तीन लोक को (रखा जाये तो) वह पलड़ा उछल पड़ेगा! पूरा पलट जाएगा वह पलड़ा! यह पलड़ा वजन के कारण ज़ोर से बैठ जाएगा। इसका तोल किया जाये तो आत्मा का पलड़ा बैठ जाएगा और दूसरा पलड़ा उछल जाएगा ! आत्मा ऐसा अनंत महिमावंत है!! (जिसके आगे) बाह्य वैभवों की निर्मूल्यता जीव को भासित हुए बिना रहेगी नहीं। यह १०० नंबर पूरा हुआ।

(पृष्ठ संख्या १९ से आगे..)

भवभ्रमणमें हम परिभ्रमण करते आये हैं, ऐसे परिभ्रमणके दौरान सत्पुरुषका योग क्वचित् बनता है। जैसे अनन्तकालमें मनुष्यभव क्वचित् ही मिलता है, ऐसे क्वचित् मिलनेवाले अनेक मनुष्यभवमें- अनन्त मनुष्यभवमें ऐसे दुर्लभ सत्पुरुषका योग भी क्वचित्-क्वचित् होता है। इसका मूल्य बहुत बड़ा है। एकबार कोई मृत्युसे बचा ले, कॅन्सर-सा रोग मिटा दे तो मैं उसका गुलाम हो जाऊँ ऐसा कहेगा।

पीड़ासे चीखता हो ऐसी वेदनासे कोई बचा ले तो यूँ कहेगा कि, तुम यदि बचा लोगे तो सारी जिंदगी तुम्हारा गुलाम बनके रहूँगा। क्या कहेगा? कि, यदि इस पीड़ासे तुम बचाओगे तो पूरी जिंदगी तुम जो कहोगे वह करुँगा। तो यहाँ तो अनन्त जन्म-मरणसे बचानेवाले श्रीगुरुका मूल्य किन शब्दोंमें, किस Termमें हो सके? कहते हैं कि, इसकी कोई Terminology नहीं है। किस Term में हो ? कौन-सी शर्त रखी जाये? इसके लिये कोई अवकाश नहीं है। ऐसे पूज्य गुरुदेवश्रीके उपकारका भी आज स्मरण करने योग्य है।

(श्री 'परमागमसार' प्रवचन नं.-२९७मेंसे)

ज्ञानियों की वास्तविक जन्मजयंति कौन-सी!!

पूज्य बहिनश्री सम्यक्जयंति(०४-०४-२४)

सम्यक्दृष्टिका स्वरूप क्या? पूज्य बहिनश्री (चंपाबहिन)का सम्यक्त्वदिन आ रहा है। (सम्यक्जयंति) है वह गुणोंका बहुमान है, व्यक्तिका बहुमान नहीं है। वास्तवमें इसमें गुणोंका बहुमान है। जो एक क्षण अनन्त भवका क्षय करती है, अनन्त भवोंका छेद करती है.. कुल्हाडीसे जैसे मूलसे उखाड़ देती है, ऐसे भवरूपी वृक्ष पर कुल्हाडीका प्रचंड प्रहार है। इस एक क्षणका अनुभव बहुत महान चीज़ है, यह अवगत कराने हेतु इसकी महानता यहाँ व्यक्त करते हैं। वह ऐसे कि, क्षणमें केवलज्ञान प्रगट करनेका सामर्थ्य प्रगट किया। कितने रस समेत यह आत्मानुभव हुआ होगा! यह वहाँ तक पहुँचे बिना समझमें आना मुश्किल है। कितने रस सहित इसका अवतरण होता है कि, जब भगवानआत्माका जैसे जन्म हुआ हो। वास्तवमें तो ज्ञानियोंकी जन्मजयंति यह है!! इसके अलावा जो देहकी जन्मजयंति, देहका जन्म हुआ है सो तो एक शरीरसे संबंध रखनेवाली बात है। जिस संबंधको तो ज्ञानी छोड़नेवाले हैं। उसकी इतनी कीमत नहीं है। वास्तवमें तो ज्ञानीके रूपमें जन्म तो इस दिन हुआ है, यह उससे बढ़कर जन्मजयंति है। हकीकतमें दो जन्मको लेवे तो - एक आत्माका जन्म ... (वैसे) आत्मा अविनाशी है परन्तु यहाँ आत्मा आत्माके रूपमें अनुभवमें आया तब वास्तवमें आत्मारूप हुआ, तब परमात्मा हुआ उसवक्त! अतः वास्तवमें यह सच्ची जन्मजयंति है। (देहवाली) चाहे मनाये या न मनाये परन्तु यह (सम्यक्जयंति) तो मनानी ही चाहिये - ऐसा है। क्योंकि इसका महत्त्व उससे अधिक है। हालाँकि बाह्यदृष्टिवानोंको बाह्य प्रसंगकी महिमा अधिक रहती है इसलिए देहके जन्मदिनको मुख्य करते हैं। जबकि ऐसा जन्मदिन तो सभी प्राणियोंका आता है। शरीर-देहका जन्म तो सर्व प्राणियोंके लिए सामान्यसा है। परन्तु आत्माका सम्यक्त्वरूप जन्म होना सो तो करोड़ों-अरबोंमें किसी एकको होता है। असाधारण बात है। कितना असाधारण है कि, करोड़ों-अरबोंमें... अरबों मनुष्योंमें, जैसे वर्तमानमें विश्वकी आबादी ४ अरब जितनी है, इसमें कोई एक होता है। यह इसकी असाधारणता है। सो तो संख्या अपेक्षा असाधारण बात हुई। परन्तु यहाँ तो केवलज्ञान प्रगट करनेकी लब्धि प्रगट हो गई वह भी एक असाधारण-सी बात है।

(पूज्य बहिनश्रीकी सम्यक्जयंतिके लिए पूज्य भाईश्री शशीभाईके हृदयोद्गार
श्री 'परमागमसार' प्रवचन नं-७८ मेंसे)

पूज्य भगवती बहिनश्री चंपाबेनकी निजानंदवेदन सम्बन्धित नोंध

आनंदका दिन

ई.स. १९३३
वांकानेर वि.सं.१९८९
(उम्र १९ वर्ष)
(शामको लगभग ३.३० बजे)

चैत्र (गु. फाल्गुन) कृष्णा १० को सोमवार दोपहर सामायिकमें, निजस्वरूप अनुभवमें आया। अनंतकालसे नहीं समझमें आया स्वरूप, समझमें आया। आनंदसागर उछल रहे थे। वह स्वरूप आश्चर्यकारी व अद्भुत है।

परम उपकारी परम प्रतापी सद्गुरुदेवको नमस्कार।

चैत्र (गुज. फाल्गुन) कृष्णा दसवींके दिन हुई मंगलकारी स्वानुभूति सम्बन्धी पूज्य बहिनश्रीकी नोंध

चैत्र (गु. फाल्गुन) कृष्णा दसवींका अपूर्व दिन

वांकानेर, सं. १९८९ (वैशाख मासमें लिखा गया)
(ई.स.१९३३; उम्र १९ वर्ष)

स्वस्वरूपका लक्ष्य आते, चैत्र (गुजराती फागुन) कृष्णा दशमी सोमवारको दोपहरमें, ज्ञाताधाराकी वृद्धि होने पर, उस स्वरूपका ध्यान होने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उस स्वरूपमें वेग तीव्रतासे आकर उपयोग परलक्ष्यसे छूटकर, अपने स्वस्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्यभगवान उस स्वरूपका अनुभव करते थे। अपने निर्विकल्प सहज स्वरूपमें खेल रहे थे, रमण कर रहे थे। अनुपम और अद्भुत ऐसे आत्मद्रव्यकी महिमा कोई अपार है! चैतन्यदेव आनंदतरंगोंमें डोलते थे।

अहा! अनन्तकालसे छीपे हुए आत्मभगवान प्रकट हुए, उनका छीपा हुआ ऐसा अनुपम अमृतस्वाद वेदनमें आया, अनुभवमें आया।

हे श्री सद्गुरुदेव! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रकट हुआ, वह परमकृपाळु सद्गुरुदेवका ही प्रताप है।

भारतखँडमें अपूर्व मुक्तिमार्ग प्रकाशनेवाले परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार!

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके
समाधिदिन(चैत्र वदि पांचम- २८/०४/२४) के उपलक्ष्यमें...

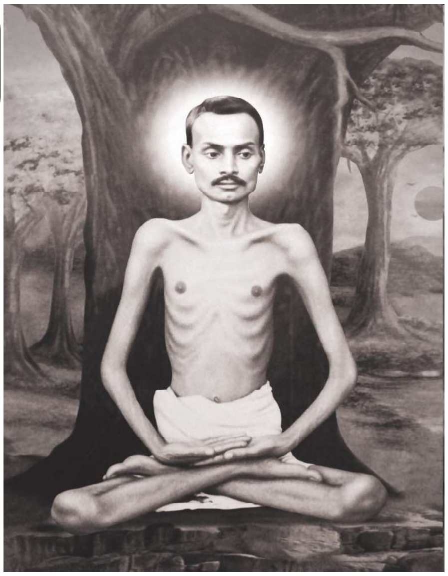

आज श्रीमद् राजचंद्रजीका स्वर्गारोहणका दिन है। १९५७ चैत्र वद पांचम। मनुष्य पर्यायका त्यागकर देवपर्यायको अवधारण किया। दस वर्षके साधक जीवनमें अनन्त भवभ्रमणका नाशकर केवल एक भव जिनका शेष बचा है, अगले भवमें मनुष्य होकर चरमशरीरी अवस्थामें निर्वाणदशाको प्राप्त होंगे। उनका जो स्वरूप प्रत्ययी पुरुषार्थ और जो अंतरंग ज्ञानदशा है वह बहुत अद्‌भुत है। जिसका बहुत सूक्ष्मतासे स्वाध्याय करने पर तत्त्वदृष्टि प्राप्त हो ऐसा प्रकार है। भले ही वह पर्याय संबंधित विषय है फिर भी जिस पर्यायमें स्वभाव प्रकट होता है अर्थात्

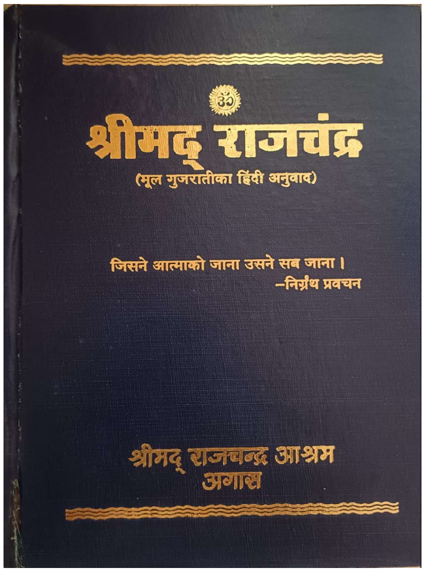

जो पर्याय व्यक्त स्वभावाकार प्रगट हो, वह पर्याय भी (अन्यको) स्वभावदृष्टिका निमित्त होती है। दूसरे को वह स्वभावदृष्टिका निमित्त बनता है। ऐसी दृष्टि द्वारा उनका जो अंतरंग जीवन है उसका अवलोकन करने जैसा है। वे स्वयंका तो पर्याप्त कार्य कर गये, परन्तु दूसरे अनेक जीवोंके लिये शब्ददेह छोड़ते गये, अक्षरदेह छोड़ते गये। उनकी देह तो पंचमहाभूतमें विलीन हो गई, परन्तु अक्षरदेह छोड़ गये हैं। जो अक्षरदेह सैंकड़ों, हज़ारों साल रहेगा। वर्तमानमें जो प्रिन्टिंगकी सुविधा उपलबध है, इसे देखते हुऐ हज़ारों साल तक उनकी (वाणी)... क्योंकि पुस्तककी तो इतनी आयु नहीं होती, एक ही पुस्तक तो इतने लंबे समय तक टिक नहीं सकता, किन्तु उत्तरोत्तर इसकी प्रतिकृति होती जायेगी, इस अपेक्षा ये अक्षरदेह विद्यमान रहेगा। कितने ही भव्य आत्माओंका अनेक भव्य आत्माएँ अपना हित कर लेंगे। जिनकी पात्रता होगी, जिनकी भवितव्यताका परिपाक समीप होगा - नज़दीक होगा ऐसे जीव काम कर लेंगे। और उन जीवोंको मूलमार्ग प्राप्त होनेमें वे निमित्तभूत होंगे। उनके पत्रोंका, उनके वचनोंका, उनके वचनामृतोंका स्वाध्याय करना भी उनके प्रति बहुमान है, उनके प्रति भक्ति है। आत्महितार्थ ऐसे वचनामृतोंको अंगीकृत करना वह उनके प्रति परम भक्ति है।

(परम कृपालुदेवके समाधिदिन पर पू.भाईश्रीके हृदयोद्‌गार...)
('श्रीमद् राजचंद्र' प्रवचन नं-१४७में से)

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके पत्रों पर
पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन

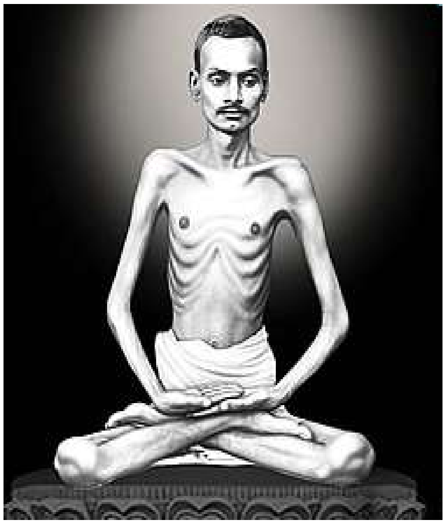

पत्रांक-९५१

राजकोट, फागुन वदी ३, शुक्र, १९५७

''अति त्वरासे प्रवास पूरा करना था। वह बीचमें सहराका रेगिस्तान सम्प्राप्त हुआ।

सिरपर बहुत बोझ रहा था उसे आत्मवीर्यसे जिस तरह अल्पकालमें वेदन कर लिया जाये उस तरह योजना करते हुए पैरोंने निकाचित उदयमान थकान ग्रहण की।

जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता, यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है।

शरीर-स्थिति उदयानुसार मुख्यतः कुछ असाताका वेदन कर साताके प्रति।''

परमकृपालुदेवकी सम्यक्पुरुषार्थ सहित प्रथमसे ही ऐसी भावना थी कि परिभ्रमणका प्रवास त्वरासे (इसी भवमें) पूरा करना, और तद्अनुसार उन्होंने पुरुषार्थ उठाया था, वहाँ बीचमें शरीर रोगरूप सहराका रेगिस्तान सम्प्राप्त हुआ।

पूर्व संचित कर्मका बोझ कर्जरूप अपने सिरपर बहुत था, उसे आत्मिक पुरुषार्थसे जिस तरह अल्पकालमें वेदन कर लिया जाये, ऐसे अप्रतिहत पुरुषार्थकी योजना भी की, और जैसे ही स्वरूपमें पुरुषार्थकी दौड़ लगायी कि पेरौंने (शरीरधर्मने) निकाचित यानी कि जिसमें कोई फेरफार नहीं हो सके, ऐसी उदयमान विघ्नरूप थकान ग्रहण की।

वर्तमान पंचमकालमें पुरुषार्थकी पूर्णता प्रगट करके परमात्मपदकी प्राप्ति और निर्वाणपद प्राप्त हो, ऐसी योग्यतावाले आत्मा इस क्षेत्रमें, इस कालमें जन्म नहीं लेते। (इस कालमें निर्वाणपदको प्राप्त करनेवाले महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेते हैं) ऐसा वस्तुस्वरूप है - जो केवलज्ञान द्वारा परमागमोंमें प्रसिद्ध हुआ है। उसमें कुछ अन्यथा नहीं होता, ऐसा जो केवलज्ञानका आश्चर्यकारी स्वरूप, उसकी प्रतीति हुई है, और आत्मामें तो शरीररोगसे बाधा न हो, ऐसी अव्याबाध स्थिरता रहती है।

उन्होंने पूर्णताकी प्राप्ति हेतु उग्र पुरुषार्थ उठाया था, फिर भी एक भव बाकी रहे, ऐसी स्थिति अंतमें रह गई। यही नियतिका अद्भुत आश्चर्य है। साथ ही साथ सम्यक् समाधानपूर्वक परिणमनमें अव्याबाध स्थिरता है।

शरीर प्रकृत्तिके उदय अनुसार असाताका वेदन होता है, तथापि उन्होंने शांतभावसे वेदन किया है। असाताका वेदन गौण रहा है। जिससे भावि असाताके बंधका निमित्त नहीं हुई, परन्तु पूर्व असाताकर्मकी निर्जरा हुई है। जिसके कारण भविष्यमें अनंत-अनंत समाधिसुखकी, अनंत दर्शन और अनंत ज्ञान सहित, स्थितिको प्राप्त होंगे।

सत्पुरुषोंका सनातन सन्मार्ग जयवंत वर्तो !!

('धन्य आराधना'मेंसे साभार उद्धृत)

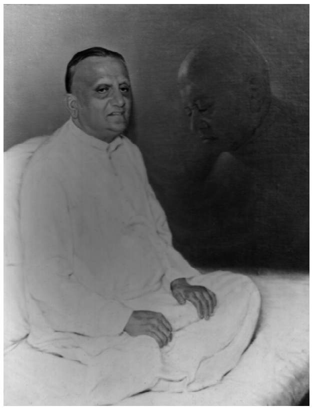

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में से 'मृत्यु के पहले तैयार रहो' विषय पर पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

मृत्युके समय जीवको अपनी रुचिका विषय ही मुख्य हो जाता है; अन्य सभी चीजोंसे रुचि हट करके, जिसकी रुचि थी उसी एक चीजकी मुख्यता हो आती है। - ऐसे, जिसको आत्माकी रुचि है, उसको मृत्युके समय अपना आत्मा ही मुख्य हो जाता है; उस समय तो सब कुछ समेट लेना है। (-इस बात पर किसी जिज्ञासुने श्रीमद् राजचन्द्रजीके देहान्तसमय कहे हुए वे शब्द कि ''मैं स्वरूपमें लीन होता हूँ'' दोहराए, जिसे सुनकर सोगानीजीने कहा कि 'ऐसा ही होता है'।) दूसरेसे कहे कि 'मुझे सुनाओ' तो उसकी योग्यता भी उसी प्रकारकी है, तभी ऐसा विकल्प आता है। ३००.

*

मृत्युके समय (कोई) 'मुझे सुनाओ' ऐसा भाव जब उठता है, तब तो स्वयंकी तैयारी नहीं है। (जिसे) अन्दरमें (स्वरूपका घोलन) चल रहा है उसको कोई दूसरा सुनाए - ऐसा विकल्प ही नहीं उठता, उसको तो उस समय अधिक बल होवे तो निर्विकल्पता आ जाती है; अगर निर्विकल्पता नहीं आती है तो भी स्वकी अधिकता तो छूटती ही नहीं। ३१७.

*

हर क्षण मृत्युके लिए तो तैयार ही रहना; कभी भी हो और कैसी भी वेदना हो - सातवीं नरक जैसी भी वेदना हो, फिर भी क्या? (मृत्यु तथा मृत्युकी वेदना - दोनोंसे 'मैं' अधिक हूँ, ऐसा मैं मेरे स्वसंवेदनसे अनुभव करता हूँ।) ४६१.

*

मृत्यु कब आनेवाली है, यह तो निश्चित (जानकारीमें) नहीं है, परन्तु आनेकी है सो तो निश्चित है; इसलिए हर क्षण तैयार रहना है। शरीरके टुकडे-टुकडे हो जाएँ; रोम-रोम पर धधकती सुईयाँ लगा दी जाएँ ...फिर भी, 'अपने ध्रुव तत्त्व' में इनका प्रवेश ही कहाँ है ? ४७४.

*

पहले ही से शरीरसे भिन्नताका जिसने (प्रयोगात्मक) अभ्यास किया है, वो ही मरण समय (पुरुषार्थमें) टिक सकता है। क्योंकि जिसकी जो रुचि होती है, वही मरणके समय मुख्य हो जाती है। अतः जिसने पहलेसे ही भिन्नताका अभ्यास किया है, वो ही टिक सकेगा।

उत्कृष्ट पात्र होवे - जिसकी एक-आध भवमें मुक्ति होनेवाली हो, वही (मरण-समय) निर्विकल्प समाधि रख सकता है। उससे नीचे (कम योग्यता) वालेको विकल्प पूर्वक (आत्म-लक्ष्य सहित) इसी तत्त्वकी दृढताका चिंतन चलता है। उससे नीचेवालेको देव-शास्त्र-गुरुकी भक्तिका विकल्प आता है। साधकको तो आकरी (तीव्र) वेदना आदि हो, कुछ भी न चले, तो भी ध्रुव तत्त्वकी अधिकता तो छूटती ही नहीं। ४७५.

श्री महावीरभगवान जन्मकल्याणक एवं पूज्य गुरुदेवश्री संप्रदाय परिवर्तन दिन (चैत्र सुदि तेरस - २१-०४-२४)

आज (महावीर भगवानका) जन्म कल्याणक दिन है। इसी दिन हमारे अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री (कानजीस्वामी) ने जाहिर परिवर्तन किया था। जबसे समयसार हाथ लगा था तबसे अंतरंग परिवर्तन तो हो चुका था। अभ्यंतर परिणामको बाह्यक्रियामें स्वतः कुछ समय लगता है। १९९१ चैत्र सुदि तेरसके दिन पूज्य गुरुदेवश्रीने जाहिर परिवर्तन किया और दिगम्बर आम्नायका स्वीकार किया। इसके पहले प्रयोजनभूत अध्ययन तो करीब-करीब सारा हो चुका था। वह इसलिये आवश्यक है कि, जैसे पहले कुछ जानते नहीं थे और यूँ ही समयसार मिला और स्वीकार कर लिया, ऐसे एक पक्षवाला प्रकार नहीं था। श्री भगवान महावीरस्वामीका शासन अभी प्रवर्तमान है और इनके शासनमें वर्तमानमें उनके द्वारा प्ररूपित उपदेशकी परम्परासे हमलोग लाभ ले रहे हैं। अतः उनका भी हम पर उपकार वर्तता है। भले ही वे प्रत्यक्ष नहीं हैं, वर्तमानमें वे सिद्धालयमें विराजमान हैं फिर भी उनकी देशना आचार्योंकी परंपरा द्वारा जो चली आ रही है जो गुरुदेवश्री पर्यंत हमें मिली, अतः भगवान हमारे उपकारी हैं। आजका दिन उस उपकारकी स्मृतिका दिन है। उन्होंने जिस मार्गको निरूपित किया और आत्मस्वरूपको बतलाकर उन्होंने जो शुद्धता प्रकट की, वह सब कुछ मंगल है, महिमा करने योग्य है। अतः हृदयसे उनकी महिमापूर्वक उनके उपकारको आजके दिन स्मरण करना चाहिये। पूज्य गुरुदेवश्रीने अगर इसतरह जाहिरमें परिवर्तन न किया होता तो शायद इतने जीवोंका इस अलौकिक विषयके प्रति ध्यान नहीं जाता शायद इतने साहित्यकी प्रसिद्धि नहीं होती, इतने मंदिर नहीं बनते या जैसे कुंदकुंदाचार्यके विषयमें तत्पश्चात हुए मुनियोंने ऐसा लिखा - कहा है, ऐसे शिलालेख मिलते है कि, अगर कुंदकुंदाचार्यने महाविदेहकी यात्रा करनेके पश्चात् ऐसा उपदेश नहीं दिया होता तो - हम मुनियोंकी क्या हालत होती? ठीक इसीप्रकार यदि गुरुदेवश्रीका ऐसा उपदेश प्रसिद्ध न होता, मानो अन्य ज्ञानियोंकी भाँति वे भी गुप्त रह जाते तो हमारी आज क्या स्थिति होती यह कहना मुश्किल है। अनन्त

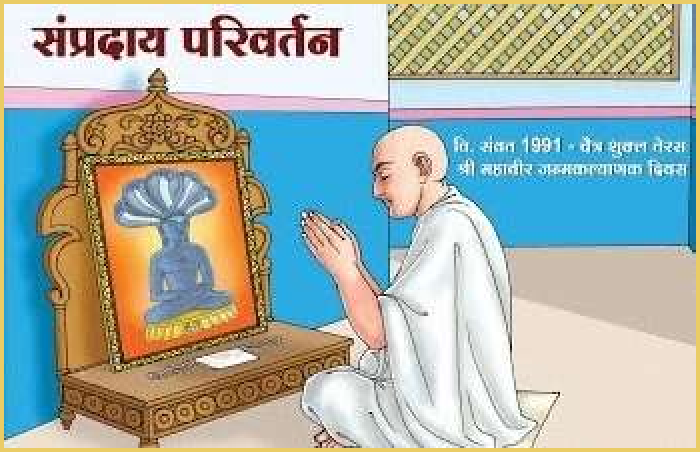

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १३ पर..)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

शशीप्रभु समाधि मंदिर
"ज्ञानमात्र"

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041